॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

जाबाल उपनिषद

विषय सूची

॥अथ जाबालोपनिषत् ॥ 3
जाबाल उपनिषद 4
शान्तिपाठ 12

॥ श्री हरि ॥

॥अथ जाबालोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

जाबालोपनिषत्ख्यातं संन्यासज्ञानगोचरम् ।
वस्तुतस्त्वैपदं ब्रह्म स्वमात्रमवशिष्यते ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह परब्रह्म पूर्ण है और वह जगत ब्रह्म भी पूर्ण है, पूर्णता से ही पूर्ण उत्पन्न होता है। यह कार्यात्मक पूर्ण कारणात्मक पूर्ण से ही उत्पन्न होता है। उस पूर्ण की पूर्णता को लेकर यह पूर्ण ही शेष रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥ जाबालोपनिषत् ॥

जाबाल उपनिषद

ॐ बृहस्पतिरुवाच याज्ञवल्क्यं यदनु कुरुक्षेत्रं
देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम् ।
अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां
भूतानां ब्रह्मसदनम् ।
तस्माद्यत्र क्वचन गच्छति तदेव मन्येत तदविमुक्तमेव ।
इदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां
भूतानां ब्रह्मसदनम् ॥

अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म
व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति
तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत अविमुक्तं न
विमुञ्चेदेवमेवैतद्याज्ञवल्क्यः ॥ १॥

भगवान् बृहस्पति ऋषि याज्ञवल्क्य से बोले-प्राणों का कौन सा स्थान (क्षेत्र) है? इन्द्रियों के देवयजन का क्या अभिप्राय है? एवं समस्त प्राणियों का ब्रह्मसदन क्या है? याज्ञवल्क्य ने उत्तर देते हुए कहा अविमुक्त ही प्राणों का क्षेत्र है। उसे ही इन्द्रियों का देवयजन कहा गया है और वही समस्त प्राणियों का ह्मिसदन है। अस्तु, किसी भी स्थान पर जाने वाले को यही समझना चाहिए। वही (कुरुक्षेत्र) प्राण-स्थान इन्द्रियों का देवयजन है और समस्त प्राणियों का ब्रह्मसदन

(ब्रह्मस्थान) है। जब इस जगत् में जीव के प्राण को उत्क्रमण होता है, उस समय रुद्रदेव तारक ब्रह्म के सम्बन्ध में उपदेश करते हैं, जिससे वह जीव अमृतत्व पाकर मोक्ष पद की प्राप्ति करता है। इसीलिए प्राणी के लिए उचित है कि वह सदैव अविमुक्त की उपासना करता रहे, उसे कभी न छोड़े। इस प्रकार ऋषि याज्ञवल्क्य ने यह तथ्य प्रतिपादित किया॥१॥

अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं य एषोऽनन्तोऽव्यक्त
आत्मा तं कथमहं विजानीयामिति ॥
स होवाच याज्ञवल्क्यः सोऽविमुक्त उपास्यो य
एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठित इति ॥
सोऽविमुक्तः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति । वरणायां नाश्यां च
मध्ये प्रतिष्ठित इति ॥
का वै वरणा का च नाशीति ।
सर्वानिन्द्रियकृतान्दोषान्वारयतीति तेन वरणा भवति ॥
सर्वानिन्द्रियकृतान्पापान्नाशयतीति तेन नाशी भवतीति ॥
कतमं चास्य स्थानं भवतीति । भ्रुवोर्घ्राणस्य च यः
सन्धिः स एष द्यौर्लोकस्य परस्य च सन्धिर्भवतीति । एतद्वै
सन्धिं सन्ध्यां ब्रह्मविद उपासत इति । सोऽविमुक्त उपास्य इति
। सोऽविमुक्तं ज्ञानमाचष्टे । यो वैतदेवं वेदेति ॥ २॥

इसके पश्चात् अत्रि मुनि ने याज्ञवल्क्य ऋषि से पूछा- 'इस अनन्त और अव्यक्त आत्मा को किस प्रकार जाना जा सकता है'? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया- 'इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए अविमुक्त की ही उपासना करनी चाहिए, क्योंकि वह अनन्त और अव्यक्त आत्मा

अविमुक्त में ही प्रतिष्ठित है'॥ यह अविमुक्त किसमें प्रतिष्ठित है? यह पूछे जाने पर ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा- 'यह वरणा और नासी के मध्य में विराजमान है।' अत्रि मुनि ने पुन: पूछा-यह वरणा और नासी क्या है ? ऋषि ने उत्तर दिया- समस्त इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों) द्वारा किये गये पापों (दोषों) का जो निवारण करती है, वह वरणा है तथा जो समस्त इन्द्रियों द्वारा किये गये पापों को विनष्ट करती है, वह नासी है।' उनके पुनः यह पूछने पर कि इसका स्थान कौन सा है? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया- 'भृकुटी और नासिका का सन्धि स्थल ही इसका स्थान है। इसी को इस छु लोक और परलोक का संगम स्थल भी कहा गया है। ब्रह्मविद् इस सन्धि स्थल (भ्रू-घ्राण सन्धि) की उपासना करते हैं। अस्तु, वह अविमुक्त ही उपास्य है। इस प्रकार अविमुक्त की उपासना के फलस्वरूप जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वही दूसरों को आत्मा के सन्दर्भ में उपदेश करने में समर्थ है'॥२॥

अथ हैनं ब्रह्मचारिण ऊचुः किं जप्येनामृतत्वं ब्रूहीति ॥
स होवाच याज्ञवल्क्यः । शतरुद्रियेणेत्येतान्येव ह वा
अमृतस्य नामानि॥ एतैर्ह वा अमृतो भवतीति एवमेवैतद्याज्ञवल्क्यः
॥३॥

इसके पश्चात् ब्रह्मचारी शिष्यों ने ऋषि याज्ञवल्क्य से पूछा-किसका जप करने से अमृतत्व प्राप्त किया जा सकता है? ऋषि याज्ञवल्क्य ने

कहा- 'शतरुद्रीय जप के द्वारा अमृतत्व प्राप्त होता है। इसके द्वारा वह (साधक) मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है'॥३॥

अथ हैनं जनको वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच
भगवन्संन्यासं ब्रूहीति । स होवाच याज्ञवल्क्यः ।
ब्रह्मचर्यं परिसमाप्य गृही भवेत् । गृही भूत्वा वनी
भवेत् । वनी भूत्वा प्रव्रजेत् । यदि वेतरथा
ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वा ॥
अथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको
वोत्सन्नाग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत् ।
तद्धैके प्राजापत्यामेवेष्टि,न् कुर्वन्ति । तदु तथा न
कुर्यादाग्नेयीमेव कुर्यात् ॥
अग्निर्ह वै प्राणः प्राणमेव तथा करोति ॥
त्रैधातवीयामेव कुर्यात् । एतयैव त्रयो धातवो यदुत
सत्त्वं रजस्तम इति ॥
अयं ते योनिरृत्विजो यतो जातः प्राणादरोचथाः । तं
प्राणं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धय रयिम् । इत्यनेन
मन्त्रेणाग्निमाजिघ्रेत् ॥
एष ह वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ
स्वाहेत्येवमेवैतदाह ॥
ग्रामादग्निमाहृत्य पूर्वदग्निमाघ्रापयेत् ॥
यद्यग्निं न विन्देदप्सु जुहुयात् । आपो वै सर्वा देवताः
सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहेति हुत्वोधृत्य
प्राश्नीयात्साज्यं हविरनामयं मोक्षमन्त्रः त्रय्यैवं
वदेत् । एतद्ब्रह्मैतदुपासितव्यम् । एवमेवैतद्भगवन्निति वै
याज्ञवल्क्यः ॥ ४॥

एक बार विदेहराज जनक ने ऋषि याज्ञवल्क्य के समीप पहुँचकर सविनय यह कहा-'हे भगवन्! मुझे संन्यास के सम्बन्ध में बताइये।' ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा- 'सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिए। उसे समाप्त करके गृहस्थ बनना चाहिए। गृहस्थ बनकर तब वानप्रस्थ (वानप्रस्थी) बनना चाहिए। वानप्रस्थ होकर प्रव्रज्या अर्थात् संन्यास ग्रहण करना चाहिए। यदि (विषयों से) विरक्ति हो जाये, तो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ किसी भी आश्रम के पश्चात् प्रव्रज्या अर्थात् संन्यास में प्रवेश किया जा सकता है। इसी प्रकार व्रती हो या अव्रती, स्नातक हो या अस्नातक, स्त्री की मृत्यु हो जाने पर अग्नि ग्रहण करके त्याग किया हो अथवा अग्नि ग्रहण करके संस्कार न किया गया हो, चाहे जो भी स्थिति हो, जब मन विषयों से पूर्ण विरक्त हो। जाए, तभी प्रव्रज्या अर्थात् संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिए॥ (इस अवसर पर) कुछ लोग प्राजापत्य इष्टि करते हैं; किन्तु ऐसा नहीं करना चाहिए। उन्हें आग्नेयी इष्टि करनी चाहिए, क्योंकि अग्नि ही प्राण है। इसकी इष्टि करने से प्राणाभिवर्धन होता है। इसके पश्चात् त्रिधातु इष्टि करनी चाहिए। सत, रज और तम ये तीन धातुएँ हैं (सत शुक्ल वर्ण है, रज लोहित वर्ण है और तम कृष्ण वर्ण है)। इन इष्टियों के पश्चात् इस मन्त्र से अग्नि का अवघ्राण करना चाहिए- हे अग्ने ! यह प्राण सामान्य कारण स्वरूप है, क्योंकि आपकी उत्पत्ति इस प्राण से ही हुई है। हे अग्ने ! आप प्राण को दग्ध करने वाले हैं, आप प्रकाश और वृद्धि को प्राप्त करने वाले हैं। आप हमारी भी वृद्धि करें। जो अग्नि की योनि (अग्नि का उत्पादक) है, वह प्राप्त है। अत: हे अग्निदेव! आप उस प्राण में प्रविष्ट हों-यह कहकर आहुति दी जानी चाहिए॥ ग्राम से

(गाँव के किसी श्रोत्रिय के गृह से) अग्नि को लाकर पूर्व वर्णित मन्त्र द्वारा उसका अवघ्राण करना (पूँघना) चाहिए। यदि अग्नि प्राप्त न हो, तो जल में आहुति प्रदान करनी चाहिए, क्योंकि जल ही समस्त देवता रूप है। मैं समस्त देवताओं को आहुति प्रदान कर रहा हूँ, ऐसा भाव करके जल में आहुति प्रदान करके घृत युक्त उस अवशिष्ट हविष्यान्न को उठाकर ग्रहण करे । मोक्षमन्त्र तीन अक्षरों (अ उ म् – ॐ) वाला है, ऐसा जानना चाहिए। वही ब्रह्म है और वही उपासना के योग्य है। ऐसा भगवान् याज्ञवल्क्य ने कहा॥४॥

अथ हैनमत्रिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्यं पृच्छामि त्वा याज्ञवल्क्य अयज्ञोपवीति कथं ब्राह्मण इति । स होवाच याज्ञवल्क्यः । इदमेवास्य तद्यज्ञोपवीतं य आत्मापः प्राश्याचम्यायं विधिः परिव्राजकानाम् । वीराध्वाने वा अनाशके वा अपां प्रवेशे वा अग्निप्रवेशे वा महाप्रस्थाने वा । अथ परिव्राड्विवर्णवासा मुण्डोऽपरिग्रहः शुचिरद्रोही भैक्षणो ब्रह्मभूयाय भवतीति । यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा संन्यसेत् । एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनैति संन्यासी ब्रह्मविदित्येवमेवैष भगवन्याज्ञवल्क्य ॥ ५॥

इसके बाद अत्रि मुनि ने ऋषि याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया-'मैं यह जानना चाहता हूँ कि जिसने यज्ञोपवीत धारण नहीं किया है, वह ब्राह्मण किस प्रकार हो सकता है?' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया- 'उसका आत्मा ही उसका यज्ञोपवीत होता है। वह जल से (तीन बार) प्राशन और आचमन करे। यह संन्यासियों (परिव्राजकों) की विधि है'॥ वीर पथ में, अनंशन की स्थिति में, (गंगा आदि के) जल में प्रवेश करने पर,

अग्नि प्रवेश में और महाप्रस्थान में परिव्राजक संन्यासी के लिए यही धर्म निश्चित है कि वह भगवा वस्त्र धारण करके मुण्डित होकर, अपरिग्रही बनकर, पवित्र और द्रोहरहित होकर भिक्षावृत्ति (लोकमंगल के लिए) अपनाकर जीवित रहे। यदि कोई संन्यास के लिए आतुर है, तो उसे मन और वाणी से (विषयों का) परित्याग करना चाहिए (विषयों से संन्यस्त होना चाहिए)। यह ज्ञान का पन्थ वेद प्रतिपादित है। इसीलिए संन्यासी के लिए यह सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि संन्यासी ब्रह्मविद् होता है। इस प्रकार भगवान् याज्ञवल्क्य ने यह मत प्रकट किया॥५॥

तत्र परमहंसानामसंवर्तकारुणिश्वेतकेतुदुर्वासऋभुनिदाघजड
भरतदत्तात्रेयरैवतकप्रभृतयोऽव्यक्तलिङ्गा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता
उन्मत्तवदाचरन्तस्त्रिदण्डं कमण्डलुं शिक्यं पात्रं
जलपवित्रं शिखां यज्ञोपवीतं च इत्येतत्सर्वं
भूःस्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत् ॥
यथा जातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहस्तत्तद्ब्रह्ममार्गे
सम्यक्सम्पन्नः शुद्धमानसः प्राणसन्धारणार्थं
यथोक्तकाले विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदरपात्रेण
लाभालाभयोः समो भूत्वा
शून्यागारदेवगृहतृणकूटवल्मीकवृक्षमूलकुलालशालाग्
निहोत्रगृहनदीपुलिनगिरिकुहरकन्दरकोटरनिर्झरस्थण्डिलेषु
तेष्वनिकेतवास्य प्रयत्नो निर्ममः
शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठोऽशुभकर्म-
निर्मूलनपरः संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसो
नाम परमहंसो नामेति ॥ ६॥

संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, दुर्वासा, ऋभु, निदाघ, जड़भरत, दत्तात्रेय और रैवतक आदि जो परमहंस संन्यासी हुए हैं, वे सभी अव्यक्त लिङ्ग अर्थात् संन्यास के चिह्नों से रहित थे। उनका आचरण भी अव्यक्त था। वे अन्दर से उन्मत्त न होते हुए भी बाहर से उन्मत्त लगते थे॥ ऐसे (उपर्युक्त स्थिति वाले) संन्यासी को चाहिए कि वह त्रिदण्ड, कमण्डलु, शिक्य (छींका भिक्षाधार पात्र), जल-पवित्र, शिखा और यज्ञोपवीत आदि प्रतीकों को 'भूः स्वाहा', ऐसा कहते हुए जल में विसर्जित कर दे। इसके उपरान्त संन्यासी को आत्मा का ही अनुसन्धान करना चाहिए॥ संन्यासी (परमहंस) यथा जातरूप धारण करने वाला अर्थात् निश्छल-नि:स्पृह होता है। वह निर्द्वन्द्व, अपरिग्रही, तत्त्व ब्रह्म मार्ग में निरन्तर गतिमान् तथा शुद्ध मन वाला होता है। जीवन्मुक्त होने पर भी वह प्राण धारणार्थ भिक्षा आदि के द्वारा आहार को उचित समय पर 'उदर' रूपी पात्र में डाल देता है। उसे किसी प्रकार के लाभ और अलाभ की चिन्ता नहीं होती ; अतः उन्हें समान समझता है। वह शून्य स्थल, देवगृह, तिनकों के समूह, सर्प की बाँबी (बिल), वृक्ष के मूल, कुम्हार के घर, अग्निहोत्र स्थल, नदी तट, पर्वत, खाई या गुफा, खोह और निर्झर आदि विशुद्ध प्रदेश में पूर्व घर का ध्यान न रख, ममता रहित होकर रहता है। वह सतत शुक्ल (सात्त्विक) ध्यान में तल्लीन रहकर अध्यात्मनिष्ठ होकर शुभ और अशुभ कर्मों को निर्मूल करता रहता है, ऐसा (संन्यास धर्म का पालन)करते हुए जो संन्यासी देह का परित्याग कर देता है, वह परमहंस कहलाता है॥६॥

॥ हरिः ॐ ॥

शान्तिपाठ

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह परब्रह्म पूर्ण है और वह जगत ब्रह्म भी पूर्ण है, पूर्णता से ही पूर्ण उत्पन्न होता है। यह कार्यात्मक पूर्ण कारणात्मक पूर्ण से ही उत्पन्न होता है। उस पूर्ण की पूर्णता को लेकर यह पूर्ण ही शेष रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इत्यथर्ववेदीया जाबालोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ जाबाल उपनिषद समाप्त ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥